समक्ष आर.एन. मित्तल, जे.

नाथी- अपीलकर्ता।

बनाम

घांसी- प्रतिवादी।

सिविल पुनरीक्षण 1977 की संख्या 1512

12 अप्रैल 1985.

स्टाम्प अधिनियम (1899 का द्वितीय) - धारा 35 और 36 - प्रोनोट के आधार पर धन की वसूली के लिए मुकदमा - इसकी स्वीकार्यता के संबंध में आपत्ति के साथ प्रदर्शित प्रोनोट - बहस के समय निर्णय लेने के लिए खुली छोड़ी गई आपत्ति - धारा 36 - क्या बाद के चरण में अदालतों को आपत्ति पर निर्णय लेने से रोका जाता सकता है - धारा 36 में 'प्रवेश' शब्द का अर्थ - समझाया गया।

आयोजित, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में प्रावधान है कि शुल्क के साथ प्रभार्य कोई भी लिखत किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसे लिखत पर विधिवत मुहर न लगाई गई हो। धारा 36 कहती है कि जहां किसी दस्तावेज को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है, ऐसे प्रवेश को उसी मुकदमे के किसी भी चरण में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि उस पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है। उसमें विचार किया गया प्रवेश न्यायिक रूप से दस्तावेज़ की स्वीकार्यता के प्रश्न को निर्धारित करने का परिणाम होना चाहिए। यदि दस्तावेज़ को तर्क के समय निर्णय की जाने वाली आपत्ति के अधीन स्वीकार किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 36 के प्रावधान आकर्षित होते हैं और अदालत को बाद में बिंदु पर निर्णय लेने से रोक दिया जाता है। हालाँकि, यदि साक्ष्य के स्तर पर स्टाम्प की

अपर्याप्तता या स्टाम्प के उचित रद्दीकरण के आधार पर स्वीकार्यता के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है और दस्तावेज़ प्रदर्शित किया जाता है, तो बाद में आपत्ति उठाना किसी भी पक्ष के लिए खुला नहीं है। इस प्रकार न्यायालय किसी दस्तावेज़ की स्वीकार्यता के प्रश्न पर बाद के चरण में भी विचार करने के लिए सक्षम है।

(पैरा 7 और 8)

सीपीसी की धारा 115 के तहत याचिका, श्री शिव दास त्यागी, जिला न्यायाधीश, गुड़गांव के न्यायालय के दिनांक 15 जून, 1977 के आदेश में संशोधन के लिए, जो श्री सी. आर. गोयल, एचसीएस, उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, पलवल के दिनांक 13 अगस्त, 1976 के आदेश की पुष्टि करता है। वादी के मुकदमे को खारिज करना और पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ देना।

याचिकाकर्ता के वकील ओ. पी. गोयल।

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता जी. सी. गर्ग।

निर्णय

राजेंद्र नाथ मित्तल, जे.

(1) यह निर्णय 1977 के सिविल संशोधन संख्या 1512 और 1513 का निपटान करेगा, जिसमें कानून के सामान्य प्रश्न शामिल हैं। फैसले में तथ्य सिविल रिवीजन क्रमांक 1512 सन् 1977 से दिये जा रहे हैं।

(2) वादी का मामला यह है कि प्रतिवादी ने 2,000 रुपये की राशि ऋण पर ली थी। 12 जुलाई, 1970 को उनसे रुपये लिए और उनके पक्ष में एक प्रोनोट और एक रसीद निष्पादित की। वह मांग पर प्रति माह 2 प्रतिशत की दर से ब्याज के साथ राशि लौटाने पर सहमत हुआ। आरोप है कि बार-बार अनुरोध के बावजूद प्रतिवादी ने राशि का भुगतान नहीं किया। 1,400 रुपये की राशि 11

जून, 1973 तक उन पर ब्याज के रूप में बकाया थे। उक्त राशि में से उन्होंने 700 रुपये की सीमा तक अपना दावा छोड़ दिया। परिणामस्वरूप उसने 2,700 (2,000 रुपये मूलधन और 700 रुपये ब्याज के रूप में) रुपये की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया।

(3) मुकदमा प्रतिवादी द्वारा लड़ा गया था जिसने वादी के आरोपों का खंडन किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी कि उसने कभी भी वादी से कोई राशि उधार नहीं ली और कभी भी कोई प्रोनोट निष्पादित नहीं किया। यदि यह साबित हो जाता है कि प्रोनोट उसके द्वारा निष्पादित किया गया था, तो यह बिना विचार के था। उन्होंने इस बात पर भी आपत्ति जताई कि प्रोनोट पर ठीक से मुहर नहीं लगाई गई थी।

(4) ट्रायल कोर्ट ने माना कि प्रतिवादी ने वादी से 2,000 रुपये की राशि ली और उसके पक्ष में प्रोनोट निष्पादित किया। इसने आगे कहा कि प्रोनोट पर लगे टिकटों को ठीक से रद्द नहीं किया गया था और इसलिए, उन्हें साक्ष्य के रूप में नहीं पढ़ा जा सका। इस निष्कर्ष के मद्देनजर इसने वादी के मुकदमे को खारिज कर दिया। वह जिला न्यायाधीश, गुड़गांव के समक्ष अपील में गए, जिन्होंने ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री की पुष्टि की और उसे खारिज कर दिया। वह इस न्यायालय में पुनरीक्षण में आया है।

(5) इस पुनरीक्षण याचिका में निर्धारण हेतु प्रश्न यह है कि यदि एक प्रोनोट को इस नोट के साथ प्रदर्शित किया जाता है कि किसी पक्ष की आपत्ति है कि यह उस पर लगे स्टाम्प के रूप में साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है या यह उचित रूप से रद्द नहीं किए गए थे, यह बाद में निर्धारित किया जाएगा कि क्या अदालत को बहस के समय उस पर निर्णय लेने से रोका गया है। प्रश्न का निर्धारण करने के लिए कुछ और तथ्य देना उचित होगा। विवादित प्रस्ताव पर दो मोहरें हैं जिनमें से केवल एक को रद्द किया गया है। इसे वादी मनोहर द्वारा

लाई (पीडब्लू 2) से साबित करने की मांग की गई थी, जो कि प्रोनोट से जुड़ी रसीद का एक प्रमाणित गवाह था। जब उनसे पूछताछ की जा रही थी, तो प्रतिवादी के वकील ने आपत्ति जताई कि प्रोनोट साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं था क्योंकि उस पर चिपकाए गए राजस्व टिकटों में से एक को ठीक से रद्द नहीं किया गया था। ट्रायल कोर्ट ने दस्तावेज़ प्रदर्शित किया लेकिन मुकदमे में बहस के समय निर्णय लेने के लिए मामले को खुला छोड़ दिया।

(6) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक बार ट्रायल कोर्ट द्वारा प्रोनोट को सही या गलत तरीके से प्रदर्शित किया गया था, स्टाम्प अधिनियम की धारा 36 के मद्देनजर इसकी स्वीकार्यता के संबंध में बाद के चरण में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। उनके अनुसार, इस आधार पर स्वीकार्यता का प्रश्न न्यायालय द्वारा उस समय तय किया जा सकता था जब प्रोनोट प्रदर्शित किया गया था और जैसे ही इसे प्रदर्शित किया गया, मामला तय हो गया। अपने तर्क के समर्थन में वह *जवेर चंद और अन्य* बनाम *पुखराज सुराणा*[1], *रामचंद्र टर्नेरी* बनाम *गजाधर दास और अन्य*[2], *जेएमए राजू* बनाम *कृष्णमूर्ति भट्ट*[3], *और बीके थापर और एक अन्य* बनाम *विजय कुमार एवं अन्य*[4] पर भरोसा जताया। दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री गर्ग ने आग्रह किया है कि दस्तावेज़ को प्रतिवादी की आपत्ति के अधीन प्रदर्शित किया गया था और स्वीकार्यता के संबंध में प्रश्न न्यायालय द्वारा बाद में निर्धारित किया जाना था। ऐसी परिस्थितियों में भले ही दस्तावेज़ को एक प्रदर्शन चिह्न दिया गया हो, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय ने मामले का निर्णय कर्तव्यनिष्ठा से किया था और स्टाम्प पर अधिनियम की धारा 36 के प्रावधान लागू नहीं होते

[1] ए आई आर 1961 एस सी 1655।
[2] ए आई आर 1967 पटना 276।
[3] ए आई आर 1976 गुजरात 72।
[4] ए आई आर 1976 जे और के 1।

हैं।

(7) मैंने पक्षों के विद्वान वकील के तर्क पर विधिवत विचार किया है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में प्रावधान है कि शुल्क के साथ प्रभार्य कोई भी लिखत किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसे लिखत पर विधिवत मुहर न लगाई गई हो। धारा के प्रावधान में कहा गया है कि 10 पैसे शुल्क या विनिमय बिल के साथ प्रभार्य उपकरण को छोड़कर अपर्याप्त रूप से मुद्रांकित उपकरण वचन पत्र या पावती या वितरण आदेश, स्वीकार किया जा सकता है यदि उसमें निर्धारित जुर्माने के साथ कुछ शुल्क के भुगतान पर साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। उपरोक्त धारा से यह स्पष्ट है कि अपर्याप्त मुद्रांकित वचन पत्र को शुल्क और जुर्माने के भुगतान पर भी साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। धारा 36 कहती है कि जहां किसी दस्तावेज को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है, ऐसे प्रवेश को उसी मुकदमे के किसी भी चरण में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि उस पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है। देखने वाली बात यह है कि *"प्रवेश"* शब्द का अर्थ क्या है। मामले की न्यायिक जांच हो चुकी है। इसी तरह का एक प्रश्न *खज़ान शाह* बनाम *अता उल्लाह*[5], में लाहौर उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के सामने आया था। उस मामले में वादी ने एक वचन पत्र के आधार पर राशि का दावा किया था। जब दस्तावेज़ को प्रदर्शित करने की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया, तो प्रतिवादी के वकील ने इसकी स्वीकार्यता के संबंध में आपत्ति जताई और बताया कि इस पर लगाए गए चार टिकटों में से एक को रद्द नहीं किया गया था। ट्रायल कोर्ट ने आपत्ति का निर्णय स्थगित कर दिया और मामले में साक्ष्य दर्ज करने के लिए आगे बढ़े। हालाँकि, दस्तावेज़ को प्रदर्शन के रूप में चिह्नित किया गया था। मामले का फैसला करते समय, ट्रायल कोर्ट ने माना कि प्रॉमिसरी नोट

[5] ए आई आर 1933 लाहोर 148 (2)।

साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं था और परिणामस्वरूप मुकदमा खारिज कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट के फैसले की पुष्टि की। मद्रास उच्च न्यायालय ने भी *कुप्पम्मल* बनाम *मु. वे. पथन्ना चेट्टी*[6] के मामले में इसी तरह का मामला निपटाया था। धारा 36 की व्याख्या करते हुए यह देखा गया कि यद्यपि धारा की भाषा से यह स्पष्ट था कि जहां एक उपकरण को साक्ष्य में स्वीकार किया गया था, उसे उसी मुकदमे के किसी भी चरण में प्रश्न में नहीं बुलाया जा सकता है। इसके तहत विचार किया गया प्रवेश एक आपत्ति उठाए जाने पर इसकी स्वीकार्यता के न्यायिक निर्धारण का परिणाम होना चाहिए और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 13, नियम 4 के तहत प्रश्न में उपकरण पर समर्थन पर मुहर लगाने से पहले होना चाहिए। स्वीकार्यता का निर्धारण केवल एक यांत्रिक कार्य हो सकता है जो उक्त धारा के तहत प्रवेश नहीं होगा। *रोम नारायण सिंह* बनाम *बटुक भैरों पांडे*[7] और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने *कोल्ली एरन्ना और अन्य बनाम बेल्लमकोंडा थिमैया और अन्य*[8], में भी यही दृष्टिकोण अपनाया था।

(8) उपरोक्त मामलों में अनुपात से यह पता चलता है कि धारा 36 के तहत विचार किया गया प्रवेश न्यायिक रूप से दस्तावेज़ की स्वीकार्यता के प्रश्न को निर्धारित करने का परिणाम होना चाहिए। "यदि दस्तावेज़ को बहस के समय आपत्ति पर निर्णय लेने के अधीन स्वीकार किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 36 के प्रावधान आकर्षित होते हैं और न्यायालय को बाद में समस्याओं पर निर्णय लेने से रोक दिया जाता है। हालाँकि, यदि साक्ष्य के स्तर पर स्टाम्प की अपर्याप्तता या स्टाम्प के उचित रद्दीकरण के आधार पर स्वीकार्यता के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है और दस्तावेज़ प्रदर्शित

[6] ए आई आर 1956 मद्रास 250।

[7] 1965 अलाहबाद ला जर्नल 850।

[8] ए आई आर 1966 ए पी 184।

किया जाता है, तो बाद में आपत्ति उठाना किसी भी पक्ष के लिए खुला नहीं है।

(9) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा संदर्भित सभी मामले अलग-अलग हैं। *जवेर चंद के मामले (सुप्रा)* में साक्ष्य के समय कोई आपत्ति नहीं ली गई कि दस्तावेज़ को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उस पर उचित मुहर नहीं लगी थी। *रामचन्द्र तिवारी के मामले (सुप्रा)* में आपत्ति की गई थी कि दस्तावेज़ को ज़ब्त करने की आवश्यकता है क्योंकि उस पर पर्याप्त मुहर नहीं लगी थी। आपत्ति के मद्देनजर जुर्माना अदा किया गया और दस्तावेज को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया। *जेएमए राजू के मामले (सुप्रा)* में ट्रायल कोर्ट ने अपना दिमाग लगाने के बाद अपर्याप्त मुद्रांकित दस्तावेज़ को प्रदर्शित किया था और *बीके थापर के मामले (सुप्रा)* में प्रतिवादी द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था कि दस्तावेज़ को जब्त कर लिया जाए क्योंकि उस पर अपर्याप्त रूप से मुद्रांकित किया गया था और उसे स्वीकार्य घोषित किया जाए। साक्ष्य में न्यायालय ने पाया कि जब अवसर आएगा, तो दस्तावेज़ को अस्थायी रूप से स्वीकार किया जाएगा और यह प्रवेश धारा 36 के अर्थ के अंतर्गत प्रवेश नहीं होगा। इसलिए, आवेदन को इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया कि प्रश्न का निर्णय करना आवश्यक नहीं है। तुरंत आवेदन खारिज होने के खिलाफ प्रतिवादी लेटर्स पेटेंट अपील में गया। इसलिए, मेरे विचार में, उपरोक्त मामलों में जिन टिप्पणियों पर श्री गोयल ने मेरा ध्यान आकर्षित किया था, वे उन मामलों की विशिष्ट परिस्थितियों में की गई थीं और वे वर्तमान पुनरीक्षण याचिकाओं पर निर्णय लेने में कोई सहायता नहीं करती हैं। वर्तमान मामले में, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, न्यायालय द्वारा यह आदेश दिया गया था कि प्रोनोट की स्वीकार्यता के संबंध में आपत्ति का निर्णय अंतिम बहस के समय किया जाएगा। पहले से दर्ज कारणों से, मेरी राय है कि न्यायालय अंतिम बहस के समय आपत्ति का निर्धारण कर सकता है। परिणामस्वरूप मैं विद्वान वकील की दलील को अस्वीकार करता हूं।

(10) 1977 के सिविल रिवीजन नंबर 1513 के तथ्य समान हैं और इसमें कोई अतिरिक्त तर्क नहीं दिया गया है। उपरोक्त कारणों से मुझे पुनरीक्षण याचिकाओं में कोई योग्यता नहीं मिली और लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के इसे खारिज कर दिया जाता है।

अस्वीकरण : *स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।*

अवंतिका
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
करनाल, हरियाणा